राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस

9 – रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद – 201009

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना वर्ष 59 अक्टूबर-दिसम्बर 2013 अंक 4

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-66, सैक्टर-6, नोएडा-201301

रामाश्रम सत्संग (रजि.), गाज़ियाबाद

विषय-सूची

अक्टूबर–दिसम्बर 2013

क्रमांक			पृष्टांक
1.	कोई समझे	*भजन*	01
2.	आध्यात्म विद्या का सार (भाग–3)	*लालाजी महाराज*	02
3.	सच्ची भेंट	*डा. श्रीकृष्णलालजी महाराज*	06
4.	सत्संग की साधना	*डा. करतार सिंह जी महाराज*	16
5.	नई कार्यकारिणी की सूचना		23
5.	दिव्य देन	*संस्मरण*	25
6.	घोषणा	*शिक्षक एवं मॉनिटरों की नियुक्ति*	36
7.	सत्संग की आचार संहिता		38

विश्व विख्यात विभूतियों के महान संदेश

महामहिम सी. राजगोपालाचारी

आध्यात्मिक ज्ञान से मुक्ति

वेदांत भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है जो भूतकाल में भी उसका मूल स्रोत रहा है और अब भी है। भारतीयों ने जिस साहस, शौर्य, आत्म बलिदान, और महानता का परिचय दिया, वह सब का सब वेदों के दर्शनशास्त्र, वेदांत से प्रभावित हुआ। अब भी वेदांत ही भारतीयों का जीवित–जागृत भाव और उनकी प्रतिभा है। विदेशी सभ्यता अथवा नई महत्त्वाकांक्षाओं का हम पर चाहे कितना भी प्रभाव पड़े किन्तु हमारे मुख्य स्रोत अक्षुण्ण है।

वेदांत भारत की मूल संस्कृति है। उपनिषद वेदांत के स्रोत हैं। प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करते समय हमे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वे कल ही लिखे हुए ग्रंथों के समान होंगे। जब वे लिखे गये थे, उस समय संसार, यह देश और मनुष्यों का जीवन तथा स्वभाव आज से बहुत भिन्न थे। हमें इस भारी अन्तर को भूलकर हज़ारों वर्ष पूर्व लिखित ग्रन्थों का अर्थ और उनका निर्णय आधुनिक दृष्टि से नहीं करना चाहिए।

उस काल में लिखित पुस्तकों का संबंध तत्कालीन जीवन के विषयों से ही हो सकता है। हमें अपनी कल्पना और बुद्धि से उस प्राचीन जीवन का पुनर्निर्माण करना चाहिए और भारतीय ऋषियों के लिखे हुए ग्रंथों को, यद्यपि वह अब आधुनिक क़ाग़ज़ पर आधुनिक ढ़ंग से छाप दिये गये हैं। उसी प्राचीन भूमिका के आधार पर पढ़ना चाहिए।

उपनिषद् की मुख्य षिक्षा यह है : ''मनुष्य इन्द्रिय सुख, सम्पति तथा संसार के पदार्थ से अथवा वेदों द्वारा नियत यज्ञादि कर्मो से – जिनकी शक्ति पर उस काल में पूर्ण विश्वास किया जाता था– स्वर्गादि के अत्यंत बड़े सुख प्राप्त कर लेने पर भी, स्थायी आनंद प्राप्त नहीं कर सकता। सुख केवल मुक्ति से, और मुक्ति केवल आध्यात्मिक ज्ञान से प्राप्त हो सकती है, जो कर्म–बंधनों को तोड़कर हमें परमात्मा के साथ मिला देता है।''

जब उपनिषद् लिखे गये उस समय मौखिक शिक्षा के अतिरिक्त जिसे शिष्य गुरु के निकट साहचर्य से रहकर प्राप्त करता था, अन्य किसी प्रकार की शिक्षा का प्रचार नहीं था।

राम ॐ संदेश

संस्थापक
ब्रह्मलीन परमसंत डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक
ब्रह्मलीन परमसंत डा. करतार सिंह जी
सम्पादक
डा. शक्ति कुमार सक्सेना
(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 59 **अक्टूबर-दिसम्बर 2013** **अंक 04**

भजन

कोई समझे भक्त-सुजान, राम नित किरपा करते हैं।
कभी कोमल हाथ प्रभू का, कभी बोझिल हाथ प्रभू का,
सब भाँति करें कल्याण, पग-पग रक्षा करते हैं।
कभी धन, सत्ता बरसाते, कभी दीनता दे तरसाते,
कभी सुख दे स्वर्ग समान, कभी दुख-दुविधा देते हैं।
कभी ज्ञान प्रभू जी देते, कभी बुद्धि ही हर लेते,
कभी रखकर मूढ़ अजान, वो पथ सीधा करते हैं।
हैं रूप अनेक कृपा के, कभी जय, कभी हार कराके,
प्रभु का निर्दोष विधान, देखो कब क्या-क्या करते हैं।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

अध्यात्म विद्या का सार

देखो साहबों! यह सात मंज़िल की सैर भी अपने आप होती रहती है। असल में कुछ करना धरना नहीं है। जो है वह है। मगर यह बात आम और मामूली आदमियों के लिये नहीं कही गई है। उनको तो कुछ न कुछ करना ही है और करना चाहिये। मगर जिनको भेद समझने की ताकत है वे यह जानते हैं कि सब कुछ आप से आप हो रहा है। हाँ – गुरु दर्जे वालों को तो काम करना ही है। वह भी उसी उसूल के मुआफ़िक़ होगा और हो रहा है जिसको इशारों में कुछ ऊपर बयान कर दिया गया है।

अब संतों के पंथ के तरीकों के इशारे सुनो –

1. तीसरा दिल – तलब
2. सहस्त्रदल कंवल – इश्क़
3. त्रिकुटी – मारफ़त
4. सुन्न – तौहीद
5. महासुन्न – इस्तग़ना
6. भंवर गुफ़ा – फ़ना एवं
7. सतलोक – बक़ा

अर्थात् जिज्ञासा का खुलासा (विवरण)

1.तलब – तलब हमेशा दिल की ताकत से पैदा होती है। वही इश्क़, मारफ़त, तौहीद, इस्तग़ना, फ़ना में तब्दील होकर बक़ा हो जाती है। बक़ा तो अब भी है। लेकिन ख्याली पर्दो ने ढक रखा है। अमल और शग़ल इन्हीं पर्दो के हटाने का नाम है। जब ये पर्दे हट जाते हैं तब बेनाशवान रोशनी नज़र आने लगती है। रोशनी तो अब भी है उसमें फर्क कहाँ? मगर जैसे आँखों पर उंगलियाँ रख देने पर चाँद दो या तीन दिखाई देने

लगते हैं या अगर उंगली आँखों के बिल्कुल सामने आ गई तो चाँद बिल्कुल ग़ायब मालूम होने लगता है। इस तरह उसकी भी हालत है। हालत बसवसात (वहम) ख़ादशात (शकशुबहा) और खतरात (विवेक के दौरान में जो विध्न आते हैं) बीच में पर्दे बनकर आ जाते हैं जो असल में ख़्याली ही हैं। मगर ख़्याल जिस तरह पैदा हो गया है उसी तरह हटाना भी है। और वह इसी तरह हट्ता भी है। हटेगा और ज़रूर हट कर रहेगा, आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों। इस पर विश्वास रखना चाहिये और काम खुद बखुद बनता चलेगा।

कोई कोई साहब दरियाफ्त करते हैं कि सालिकों (पंथाइयों) परमार्थ के साधकों से चलने और बढ़ने को कहा जाता है। एक मुकाम से दूसरे मुकाम पर चलना और बढ़ना होता है। इसका क्या मतलब ? गो इसका जवाब पहले आ चुका है। मग़र फिर से कहे देता हूँ कि चढ़ना और चलना हरकत है। ख़्याल की हरकत ने तारीकी (अंधकार) पैदा की। अब ख़्याल के हटाने से तारीकी दूर होगी। उँगली आँखों पर आ गई चाँद ग़ायब हो गया। अब तो वह उँगली हटाने पर ही नज़र आयेगा। यही चलने और चढ़ने का मतलब है बाकी और कुछ नहीं।

जिन रास्तों से होकर सुरत नीचे उतर आई है अब उन्हीं रास्तों पर चलकर चढ़ने से मंज़िल पर पहुँचेगी। अग़र मर्जी हो या समझ में न आई हो तो और ज़्यादा साफ़–साफ़ कहा जाये। सुनो! यह दुनिया मिसाल की जगह है। मिसाल से अच्छी तरह बात समझ में आ जाती है, और अग़र नज़र चारों तरफ जाती है तो दुयिते (दो विचारों वाले) को क्या मिला है जो अब मिलेगा। मसल मशहूर है :–

'दुबिधा में दोनों गये, माया मिली न राम'

ग़ौर से सुनो! एक बच्चा है जो अपनी माता के पेट से बाहर आया है, उसको ग़िज़ा की ज़रूरत है। मुँह खोलता है, अंगड़ाई लेता है, माता झट अपनी छाती से लगा लेती है। यह 'तलब' है। जब 'तलब' की ताकत

आई तो वह रोता है, शोर मचाता है, माता उसके ज़ज़बात (भावनाओं) को जानती है और ताज़ीम (आदर) करती है, यही 'इश्क' है। रोना, पीटना, शोर करना, इश्क की अलामात (लक्षण) हैं। कबीर साहब कहते हैं :–

कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर प्रीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत।।

हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हँसी खुशी जो हरी मिलें, तौ कौन दुहागिन होय।।

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।।

बच्चे में अभी सिर्फ इश्क है, वह नहीं जानता कि उसको ग़िज़ा (भोजन) कौन देता है। इश्क ने हाथ–पाँव मारना शुरु किया। वह माता को पहिचानने लगा। यह 'मारफत' और ज्ञान है।

जब वह माता को पहिचानने लगा तब उसको ताक़त ज़्यादा मिली। अब वह सब औरतों के बीच अपनी माता को पहिचान लेता है और उसकी गोद में खुशी तलाश करता है। जब उसका वह शान पुख्ता हो जाता है तब 'तौहीद' का दर्जा आ जाता है। माता और बच्चा मिलकर एक हो जाते हैं। इससे पहले वह शायद किसी दूसरे के पास तो रहता हो मगर उसकी नींद जब खुलेगी माता की याद आयेगी और उसको सिर्फ़ माता के पास चैन मिलेगा। क्योंकि चैन तब ही मिलता है जब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।

इस तरह माँ और बच्चे की मिसाल को देखकर प्रेम का सबक सीखना चाहिए। वह उसी से जिद करता है। कपड़े फाड़ देता है, गाली दे बैठता है, गुस्सा हो जाता है। माँ भी उसे खूब पीटती है। फिर भी भला कोई कोशिश करके उसे माँ की गोद से हटा तो ले। कुछ भी हो जाय मगर वह माँ का है और माँ उसकी है। दोनों इस बात को बिना समझाये समझते हैं। तौहीद समझने व समझाने का मजमून (विषय) नहीं है। यह दिल

का जज़बा (भाव) होता है। इसमें असलियत है, जिसकी तस्वीर कोई फोटोग्राफर नहीं खींच सकता, न कोई कवि ख़्याल में ला सकता है। बच्चा माँ का गोश्त व पोस्त है। पैदाइश की जड़ और असल है। यह इल्म किसी किताब या उपदेश से नहीं लिया गया।

बच्चा कितना भी मैला क्यों न हो और माँ कितने ही साफ़ कपड़े क्यों न पहने हो बच्चे को कीचड़ में देखकर उसे तुरन्त गोद में उठा लेगी। शेर या भेड़िया आया यह सुनते ही या कोई और डरावनी सूरत नज़र आई तो बच्चा कहाँ जायेगा ? माँ की गोद की तरफ़ भागेगा। कोई कितना भी बताये कि माँ में बचाने की ताकत नहीं है। मगर वह कहाँ किसी की सुनेगा, वह जब भी झुकेगा अपनी माँ यानी असल की तरफ ही झुकेगा।

(क्रमशः अगले अंक में)

❖❖❖❖❖❖

केवल वैराग्य से ही भय मुक्ति

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नश्पालाद भयं,
मौने दैन्य भयं बले रिपुर्यें रुपे जराया भयं।
शास्त्रे वादभर्यें गुणे खलभयं काये कश्तान्ताद् भयं,
सर्व वस्तु भयान्वितं भुवि नश्षां वैराग्यमेवा।।

अर्थात् : सुख-भोग में फँसने से अनेक शारीरिक व्याधियों के उत्पन होने का भय हो जाता है, कुल का अभिमान करने पर उसके कलंक का भय हो जाता है, धन संग्रह होने पर शासन का भय हो जाता है, मौन होने पर दीनता प्रतीत होने का भय हो जाता है, सत्ता आने पर शत्रु का भय हो जाता है, रूप सौन्दर्य की आसक्ति से वश्द्धावस्था की जर्जरता का भय हो जाता है, विद्वता होने पर वाद-विवाद में पराजय का भय हो जाता है, गुण होने पर दुष्टता का भय हो जाता है, शरीर का मोह होने पर मृत्यु का भय हो जाता है तथा वैराग्य ही भय से मुक्त कर सकता है।

– ऋषि उवाच

प्रवचन गुरुदेवः डा. श्रीकृष्ण लालजी महाराज

सच्ची भेंट : व्याख्या और विवरण

भेंट तीन प्रकार की होती हैं – रुपये पैसे या धन दौलत की, मन की और आत्मा की।

धन की भेंट – रुपये पैसे की भेंट सबसे नीची समझी जाती है। गुरु को रुपया पैसा और धन दौलत इसलिये नहीं भेंट की जाती कि वह इनका भूखा है। आपके धन की उसको जरूरत नहीं है, उसकी जरूरतें ईश्वर पूरी करता है। भेंट वह इसलिये लेता है कि उससे आपका उपकार हो और आपका पैसा जहाँ लगे उससे औरों का भला हो। दुनियाँ के जहाँ और पदार्थ मनुष्य के लिये बन्धन हैं वहाँ रुपया पैसा भी एक बन्धन है और बन्धन टूटने ही चाहिए। यह दुनियाँ में फँसाने वाला है। इसे किसी शुभ कार्य में लगाना ईश्वर की भेंट है। इस भावना से गुरु अर्पण किया जाता है। इसके साथ–साथ बन्धन ढीला होता है। भेंट देने वाला तो देकर ढीला हो जाता है मगर लेने वाले पर उसका बोझ पड़ता है। वह या तो उसका मुआवजा दे (दुआ से या और किसी तरह) या अपने शुभ कर्मो में से हिस्सा बाँटे। अगर ऐसा नहीं करेगा तो उसकी गिरावट होगी। पिछले जमाने में ब्राह्मण कितने ऊँचे थे। उनकी गिरावट का यही सबब (कारण) है कि उन्होंने भेंट का बदला नहीं दिया।

भेंट देने से गुरु चरणों में श्रद्धा बढ़ती है, मन शुद्ध होता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है। मन का शुद्ध होना ज़रूरी है, क्योंकि जब तक मन साफ नहीं होगा, आत्मा के ऊपर से आवरण दूर नहीं होंगे और ईश्वर का प्रेम नहीं मिलेगा। मन का शुद्ध होना यही है कि ईश्वर का प्रेम जागे। ईश्वर का प्रेम आत्मा में कुदरती है, लेकिन **मन की वासनायें, इंद्रिय भोग की ख़्वाहिश (इच्छा), बुद्धि की चतुराई, अपनी खुदी (अहंकार)** यही

मन के चारों पर्दे उसको ढके रहते हैं। बजाय ईश्वर प्रेम के दुनियावी चीजों से प्रेम हो जाता है। जब अभ्यास, वैराग और सत्संग से यह ख्वाहिशात शान्त हो जाती हैं तो यही मन के पर्दो का हटना है और इनके हटने पर जो ईश्वरीय प्रेम कुदरती छिपा हुआ था, आहिस्ता–आहिस्ता उभरने लगता है।

मन की भेंट – रुपये के मुकाबले में मन की भेंट ज़्यादा अच्छी है। गुरु जो कहे उस पर यक़ीन (विश्वास) करना, अपने ख़्याल को उसके साथ शामिल कर देना और उसके कहे हुये को उसी शक्ल में क़बूल कर लेना मन की भेंट है। इसके दो रूप हैं – एक मजबूरी से क़बूल करना, दूसरा खुशी से क़बूल करना। खुशी से क़बूल करना यह है कि फ़लाँ (अमुक) काम गुरु का है, उसको लगन से चाव से करना चाहिए। इसका नतीजा यह होता है कि मन का रूप बदल जाता है। उसके ख़्याल को खुशी से क़बूल करना, यही मन को तोड़ देना है। जिसने मन को तोड़ दिया वही कामयाब (सफल) है।

आप में जन्म–जन्मान्तर से दुनियाँ की ख़्वाहिशात थीं। उन्हें पूरा करने के लिये मालिक ने आपको दुनियाँ में भेजा। आपकी आत्मा ने मनुष्य शरीर धारण किया, उसके ऊपर ख़्वाहिशात का पर्दा था। ईश्वर की शक्ति से ही काल ने इस दुनियाँ को रचा। ईश्वर ने जीवों को यहाँ भेजा ताकि होश में आ जावें। इस दुनियाँ को भोगकर, उसका रस लेकर, ख़्वाहिशात को भोगकर उपराम हो जायें और अपने धाम को वापिस चले जायें, जो उसका असली ध्येय है। किसी न किसी तरकीब से उनमें जागृति आ जावे। यह दुनियाँ उसी का पसारा है।

लेकिन जो यहाँ आकर रस लेते–लेते फँस गये, ख़्वाहिशात दुनियाँ के रस और आनन्द की बढ़ने लगीं, आत्मा पर संस्कारों के गिलाफ बजाय कम होने के और चढ़ते गये और जीव जो पहले से बन्धन में जकड़े हुए थे और ज्यादा बन्धन में जकड़े जाने लगे। दुनियाँ की यह हालत देखकर

जीवों के उद्धार के लिये सन्त प्रकट हुए। उन्होंने दुनियाँ को उजाड़ा नहीं, कायम रखा क्योंकि दुनियाँ को उजाड़ कर तो असल मकसद (उद्देश्य) पूरा नहीं हो सकता। सन्त जीवों को दुनियाँ की ख़्वाहिशों से उपराम कराकर और दुनियाँ से वैराग तथा ईश्वर से अनुराग कराकर अपने धाम को वापस ले जाते हैं।

अवतारों और सन्तों में भेद है। अवतार जितने भी आये सब काल देश से आये। काल कभी यह नहीं चाहता कि दुनियाँ उजड़ जाये। लिहाज़ा (अतः) जब–जब दुनियाँ में बुराई और अधर्म बढ़ा, अवतारों ने आकर balance (सन्तुलन) क़ायम किया। बुराईयों को रोका और भलाइयों को बढ़ावा दिया ताकि दुनियाँ क़ायम रहे। जैसे कोई जमींदार है वह अपनी प्रजा को उजाड़ता नहीं, क़ायम रखता है। जब मैं डाक्टरी करता था उस समय की एक बात यहाँ मुझे याद आ गई। एक ज़मीदार थे, उनके गाँव में हैज़ा फैला। उन्होंने मुझसे कहा कि आप मेरे गाँव में मरीज़ों का इलाज कीजिये, जिसके पास पैसा नहीं होगा उसका खर्च मैं बर्दाश्त करूँगा, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरी रियाया मुझसे खुश रहे। इसी तरह रचना को क़ायम रखने के लिये अवतार आते हैं। सन्त तलवार से काम नहीं लेते, प्रेम से काम लेते हैं, अधर्मी लोगों का नाश नहीं करते बल्कि अधर्म का नाश करके परमार्थ पथ पर चलना सिखाते हैं।

रचना होने से पहले आत्माएँ अचेत अवस्था में थी। जो प्रेम के आकर्षण में खिंच गईं वह दयाल देश बन गया। वह आत्माएँ जिन पर वासनाओं (मन का) का पर्दा था वह अचेत अवस्था में पड़ी रहीं ओर प्रेम के आकर्षण में नहीं आईं। अगर वे वहीं रहतीं तो उसी अचेत अवस्था में पड़ी रहतीं। उस दयाल शक्ति की कृपा से उनका उतार इस काल देश में हुआ जहाँ पर उनके मन की ख़्वाहिशात पूरी हो सकें। यहाँ आकर वे अचेत से चेत अवस्था में आ गईं और मन की ख़्वाहिशात में फँस गईं। अग़रचे ज़ाहिरी तौर पर वह मन की वासनाओं में फँस गईं और अपने असली ध्येय को

भूल गईं, लेकिन अन्तर के अन्तर में उनका ताल्लुक उस दयाल शक्ति से बराबर बना रहा और दुनियाँ के सब सुख भोगते हुए भी उनको यहाँ परसच्चा सुख नहीं मिला।

ईश्वर के तीन रूप माने गये हैं। ब्रह्मा पैदा करने वाले, विष्णु पालन करने वाले और शिव संहार करने वाले। ये तीनों देवता सशष्टि को क़ायम रखते हैं और जब-जब खराबी होती है तो विष्णु का अवतार आकर उस खराबी को दूर करता है। लेकिन सन्त मत में ईश्वर का चौथा रूप भी मानते हैं जो सन्त या गुरु हैं जो दुनियाँ से छुड़ाने के लिये आते हैं। जब जीव इस आवागमन से तंग आ जाता है और छुटकारा पाने का ख़्वाहिशमन्द (इच्छुक) होता है तो ईश्वर का चौथा रूप (सन्त रूप) इन्सानी शक्ल (मनुष्य रूप) इख़्तियार (धारण) करता है और जो लोग (अधिकारी) जीवन मुक्त होना चाहते हैं उनको अपनी सोहबत में सत्-संगति से फ़ैज़याब (लाभान्वित) कराकर अपने धाम यानी दयाल देश को वापिस ले जाते हैं जहाँ जाकर फिर वापिस नहीं आते। इस तरह जीव हमेशा के लिये आवागमन से छूट जाता है। बाक़ी जीव जो उसकी सोहबत में आते हैं, उन पर भी उसका असर पड़ता है और वे भी आगे चलकर अधिकारी जीवों की श्रेणी में आ जाते हैं।

यह दुनियाँ काल की रचना है। यहाँ पर जो क़र्ज लिया है वह चुकाना होगा, यानी जो कर्म किये हैं, अच्छे-बुरे, उनका एवज़ (बदला) मिलेगा। मन दुनियाँ में लगा है, आत्मा अपने देश को जाना चाहती है। मन का रुख़ (मुँह) नीचे की तरफ़ है और आत्मा का ऊपर की तरफ़। दोनों में जद्दो जहद (संघर्ष) होती है। जब मौत आती है तो जान, हाथ-पैरों से खिंच कर ऊपर को सिमटती है। जब इन्द्री और गुदा से निकल जाती है तो पेशाब-पाख़ाना छूट जाता है। हृदय से निकलने पर दिल की धड़कन बंद हो जाती है, नब्ज़ छूट जाती है। गला घड़घड़ाने लगता है। वहाँ से निकलने पर आँखों की ज्योति जाती रहती है। उसके बाद भौहों के बीच

के हिस्से से होकर ऊपर चढ़ती है। वहाँ एक टेढ़ी सी पतली नली है जिसे बकनाल कहते हैं। जब इसमें होकर गुज़रती है तो बड़ी तकलीफ़ होती है। आत्मा ऊपर को खिंचती है और मन की गाँठ जो उसके साथ बँधी होती है वह उसमें से नहीं निकल पाती, टुकड़े–टुकड़े हो जाती है। आदमी हाथ–पाँव छटपटाता है, कुछ बोल नहीं सकता।

इस मुक़ाम पर बहुत अंधकार होता है। अब जो दुनियाँ में फँसे हैं उनको लेने के लिये यमदूत आते हैं और दूसरों के लिए सन्त। सन्त जब जाते हैं तो बातचीत करते–करते जाते हैं उन्हें तकलीफ़ नहीं होती। लगता है जैसे सो रहे हों। जिस रास्ते मौत होती है उस रास्ते सन्त रोज़ गुज़रते हैं, रोज़ मरते जीते हैं। अभ्यासियों ने अनुभव किया होगा कि ध्यान में जब सुरत ऊपर को चढ़ती है तो जिस्म (शरीर) का निचला हिस्सा सुन्न हो जाता है। मतलब यह है कि आत्मा वहाँ से खिंचकर ऊपर चढ़ जाती है। दुनियाँ बनती है – मन की शान्ति से, परमार्थ मिलता है – काल का कर्ज़ा देने से।

हम यहाँ पर अपनी ख़्वाहिशात की पूर्ति के लिए और उनसे उपराम होकर अपने धाम को वापिस जाने के लिये आये हैं। यानी हमारे दो आदर्श हैं। पहला यह है कि अपनी ख़्वाहिशात को ज्ञान से खत्म करो या भोगकर खत्म करो। यही काल का कर्ज़ा अदा करना है। उनसे वैराग होने पर ईश्वर–प्रेम पैदा होगा और उससे अनुराग पैदा होगा। यही ईश्वर प्राप्ति है। दुनियाँ को हासिल करो और फिर उसको छोड़ो और ईश्वर प्रेम हासिल करो और उसमें अपने आप को लय कर दो। दुनियाँ को हासिल करना बहुत मुश्किल काम है। और यही दीन और दुनियाँ का बनना है। जो दुनियाँ को हासिल नहीं कर सकता है वह दीन को क्या हासिल कर सकता है यानी जिसने चीज़ को हासिल नहीं किया है वह छोड़ेगा क्या ?

दुनियाँ के जंजाल, मन के विचार आदि, सब शैतान का पसारा हैं। जब तक शैतान से नहीं लड़ोगे कामयाब (सफल) नहीं होगे। कामयाब होने पर सच्चा सुख, हमेशा क़ायम रहने वाला सुख, ऐसा सुख जिसके बाद किसी और सुख की तुम्हें इच्छा नहीं होगी, हासिल हो जायेगा। यही लक्ष्य है।

लेकिन यह एक जन्म का काम नहीं है। कुव्वते–इरादी (इच्छा शक्ति) मज़बूत करो। अग़र औरों ने हासिल किया है तो हम क्यों नहीं हासिल कर सकते। दुनियाँ की चीज़ों को देखो, भोगो और छोड़ो, उनसे उपराम हो जाओ, पहले वैराग फिर अनुराग। जब परमात्मा से सच्चा अनुराग होता है और उसका सच्चा प्रेम हासिल हो जाता है, यही मोक्ष है। सच्चा प्रेमी मोक्ष नहीं चाहता।

इसका साधन यह है कि तुम परमात्मा के अंश हो और उसका प्रेम तुम्हारे अंदर है लेकिन तुमने उसे बाहर की चीज़ों में फैला रखा है। उसे बटोरो। मन की ख़्वाहिशात को पकड़ो, फिर बारीक–बारीक ख़्वाहिशों को। इस काम में हरदम परमात्मा की मदद चाहो, उसकी कश्पा से तकलीफें आती हैं। रुपया पैसा दौलत माँगते हो तो और फँसते हो। तकलीफ़ों की शक्ल में जो उसकी कश्पा होती है वह बन्धन छुड़ाने के लिए होती है। इसलिए फ़कीर को तकलीफ़ें ज़्यादा होती हैं। वह तकलीफ़ें चाहता है कि संस्कार जल्दी कटें। यह कर्म का सिद्धान्त है।

जब तक मन मोटा रहेगा दुनियाँ में फँसायेगा। इसे पतला करो। गिरना पाप नहीं है, गिर कर पड़े रहना पाप है। गिरो, फिर उठो और कोशिश करो। बुराइयाँ अन्दर से निकलती हैं। दिल एक समुद्र के मानिन्द (समान) है जिसमें संस्कार भरे पड़े हैं। जब तक यह साफ़ नहीं हो जाता असली हीरा (यानी ईश्वरीय प्रेम) जो हमेशा का आनन्द है, वह नहीं मिलता। असली चीज़ परमात्मा का प्रेम है। सब कोशिशें उसी को हासिल करने के लिये होती हैं। वह तब मिलेगा जब सब संस्कार कट जायेंगे। यह

मन की भेंट है। इसे जब तक गुरु को नहीं दोगे आसानी से साफ़ नहीं होगा। इसी को समर्पण या surrender कहते हैं। गुरु के स्थूल शरीर के अन्दर ईश्वर की शक्ति काम करती है, वह तुम्हारे सामने जिस्म से मौजूद है। जब तुम मौजूदा (प्रत्यक्ष) चीज़ को नहीं दे सकते तो जो ग़ायबाना (अप्रत्यक्ष) है उसे कैसे दोगे ?

आत्मा की भेंट –रुपये पैसे की भेंट बहुत लोग कर लेते हैं, मन की भेंट उनसे कुछ कम लोग कर पाते हैं लेकिन आत्मा की भेंट कोई बिरला ही कर पाता है। जिसने सब समर्पण कर दिया उसने सब कुछ पा लिया। 'तू हमारा हो लिया, हम तेरे हो गये'। 'यार हम, हम यार'। फ़ारसी में:–

मन तो शुदम तो मन शुदी,
मन तन शुदम तो जाँ शुदी,
ताकस न गोयद बाद अजीं,
मन दीगरम तू दीगरी।

अर्थः– मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं तन हुआ, तू जान हुआ। ऐसी एकता हो गई कि इसके बाद कोई नहीं कह सकता कि मैं और हूँ और तू और है।

यह आत्मा की भेंट है। यह ज़बानी नहीं होती। जिस रोज यह दे दी उसी रोज़ मुराद (मनोकामना) पूर्ण हो गई। मोक्ष हो गई। यह बात भगवान श्री कश्ष्ण ने अर्जुन को गीता के आख़ीर में बताई है। सारी गीता का यही सार है, यही उपसंहार है।

नफ़रत के ख़्याल से किसी चीज़ को छोड़ देना 'भेंट' नहीं कहलाती। जैसे कोई बैंगन, काशीफल वग़ैरा नापसन्द करता हो और उन्हें छोड़कर कहे कि मैंने यह देवता को भेंट कर दी है। भेंट सबसे प्यारी चीज़ की दी जाती है जिससे मोह हो, लगाव हो और जो दुनियाँ में फँसाने वाली हो। जब सेठ धर्मदास कबीर साहब की ख़िदमत (सेवा) में आये और

गुरु–दीक्षा चाही तो कबीर साहब ने कहा कि पहले अपना सब रुपया ख़ैरात कर दो, तब आना। धर्मदास जी बहुत बड़े सेठ थे शायद उनके पास सत्तर करोड़ रुपये की दौलत थी। इससे उनको मोह था। एकदम नहीं छोड़ सकते थे। उन्होंने निवेदन किया कि, ''हजूर पहले आधा रुपया ख़ैरात करने का हुक्म हो''। कबीर साहब ने नामंजूर कर दिया।

कुछ दिनों बाद फिर ख़िदमत में आये। रईसी ठाठबाट कुछ नहीं थे। मुँह पर दीनता थी और जिस्म पर एक कम्बल। फिर प्रार्थना की कि शरण में ले लिया जाय। पूछा गया कि क्या सब दौलत ख़ैरात कर दी ? निवेदन किया कि, ''सब दौलत ख़ैरात कर दी, अब जो कम्बल जिस्म पर है वही अपना कहलाने लायक़ है''। कबीर साहब खुश हुए और उन्हें शरण दी। पैग़म्बर इब्राहिम साहब के ऊपर सोते में वही नाज़िल (आकाशवाणी) हुई कि, 'तू मेरे लिए अपने लड़के की कुर्बानी कर'। सोचते रहे। एक ही लड़का था और उनको उससे बहुत प्यार था। उसका मोह ही राहे–रब (ईश्वर के मार्ग) में एक रुकावट थी। आख़िर कलेजे मज़बूत करके लड़के को जंगल में ले गये जैसे ही उस पर तलवार चलाने को हुए, उनको साक्षात्कार हो गया। कहने का मतलब यह है कि जो चीज़ सबसे प्यारी हो उसे ईश्वर की राह में कुर्बान कर दो।

जब संध्या में बैठो तो देखो कि किस चीज़ का ख़्याल आता है। जिन चीज़ों के ख़्याल आते हैं आत्मा का प्रकाश पाकर वे स्थूल रूप धारण कर लेते हैं। संध्या में ज़िस्म (शरीर) का गिलाफ़ (आवरण) उतर जाता है, मन काम करता रहता है। अगर मन का पर्दा टूट जाये तो ख़्याल में इतनी शक्ति आ जाती है कि आदमी भी ब्राह्मण्ड की रचना कर सकता है। आत्मा व परमात्मा के बीच की चीज़ मन है, वह चीज़ हट जाये तो आत्मा वही असल है जो परमात्मा है। गंगा बह रही है और वहीं पर गड्ढा है। दोनों

का पानी अलग–अलग है, एक पवित्र है दूसरा अपवित्र। दोनों के बीच की मेड़ तोड़ दो, दोनों एक हो गये, सब गंगाजल ही गंगाजल है।

जो ख़्वाबात (स्वप्न) आयें उन पर ध्यान रखो। ख़्वाब मन का रूप दिखाता है। तुम ख़्वाब में शेर देखते हो, ख़ूँख़्वारी की निशानी है। साँप देखते हो, कामशक्ति मौजूद है। सन्तों के दर्शन होते हैं तो जानो कि ख़्याल नेकी की तरफ़ जा रहे हैं। जिन ख़्यालात का आपने अपने mid brain (मध्य मस्तिष्क) के grey matter में impression ले रखा है सोते में उसका अक्स आता है, वही ख़्वाब है।

जो चीज़ तुम्हें फँसाये हुए है उन्हें ख़्याली तौर पर कुर्बान करो। ख़्याली तौर पर उन्हें चरणों में रख दो – ''हे मालिक यह तेरी नज़र है, हमारा मोह का पर्दा दूर कर, हमें सच्ची रौशनी दिखा''। जब जब हम फँसे हमने गुरुदेव से प्रार्थना की। उन्होंने हमेशा आगे बढ़ने की ताक़ीद (आदेश) की। फतेहगढ़ में जब मैं पढ़ता था और जब–जब मन बुराई की तरफ़ खिंचता था, मैं लालाजी (गुरुदेव) से निवेदन कर दिया करता था। अगर ज़बान से कहने में हिचकिचाहट होती थी तो लिख कर दे दिया करता था। एक बार की बात है कि एक आदत मुझसे छूटती नहीं थी। जब भी उनके सामने जाता बुरे ख़्यालात उभर आते और बड़ी परेशानी होती। मैंने जाना बंद कर दिया। उसके बाद उस रास्ते से भी जाना बंद कर दिया जिस रास्ते पर लालाजी का मकान था।

छह महीने गुज़र गये। मुझे बुलावा आया। डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी बुलाने आये। मैं उनके साथ गया लेकिन दरवाज़े से अन्दर जाने की हिम्मत न हुई, बाहर ही खड़ा रहा। डाक्टर साहब अकेले अन्दर गये। गुरुदेव ने उनसे पूछा – ''श्रीकृष्ण नहीं आया'' ? इन्होंने कहा – ''बाहर खड़े हैं''। उन्होंने हुक्म दिया –''इस तरह नहीं आयेगा, उसे आगे करके लाओ।'' डाक्टर साहब मुझे आगे करके ले गये। जैसे ही मैं कमरे में घुसा लालाजी

मुझे देखकर रोने लगे। फ़रमाया –''हमने क्या कसूर किया था जो तुमने आना बंद कर दिया ?'' उस दिन के बाद मेरी वह आदत हमेशा के लिये चली गई। मेरा तो तर्जुबा है कि जो आदत मैंने छिपाई वह रुक गई और जो आगे रख दी वह जाती रही। यही समर्पण है, सच्ची भेंट है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

●●●

महर्षि रमण का आत्म समर्पण का तरीका

कर्म के फल की इच्छा ही मनुष्य को जकड़ती है और पकड़ती है। समर्पण का अर्थ है इस बंधन से छुटकारा पाना।

एक बार डाक्टर सैय्यद ने महान ऋषि रमन से पूछा कि ''क्या आत्म समर्पण का सार यह लेना चाहिए कि साधक में हर इच्छा की मौत हो जाए अर्थात् ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा भी न रहे''। उत्तर में ऋषि ने कहा कि – **''पूर्ण आत्म समर्पण यह है कि जीव में, मनुष्य में उसकी अपनी इच्छा कोई भी न रहे। ईश्वर की इच्छा ही जिज्ञासु की इच्छा हो जाये।''** डाक्टर सैय्यद बोले –''कृपा करके मुझे बताए कि आत्मसमर्पण प्राप्त करने का क्या तरीका है ?''

महर्षि रमन बोले – ''दो तरीक़े हैं। एक तरीक़ा यह है कि जहाँ से 'मैं'' और ''मेरी'' की भावना उठती है, उसमें गुम हो जाना, इसमें फ़ना हो जाना। दूसरा तरीका यह है कि मनुष्य बार–बार सोचे कि मैं कुछ नहीं कर सकता, मेरे हाथ में कुछ नहीं, सब कुछ कराने वाले प्रभु हैं। इसलिये मैं पूर्ण रूप से प्रभु अर्पण हो जाऊँ और अपने आपको उसके हवाले कर दूँ।

बार–बार ऐसा करने से कर्त्ता–भाव (अर्थात यह भावना कि मैं कुछ कर सकूँ, मैं कुछ कर सकूँगा) मिट जाती है, अहंता का नाश हो जाता है।

प्रवचन परमसंत डा. करतार सिंह जी साहब

सत्संग की साधना का स्वरूप

साधना में बैठते हुए करना यह है कि प्रेम स्वरूप परमात्मा के चरणों में प्रेममय होकर 'मनसा वाचा कर्मणा' स्थिर होकर बैठें। इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है। बाक़ी जितनी भी पद्धतियाँ संसार में प्रभु प्राप्ति के लिए हैं बड़ी विस्तश्त हैं। जितना हम विस्तार करते गये, परमार्थ को गूढ़ बनाते गए, साधारण व्यक्ति की समझ में नहीं आता कि वह क्या करे? बस करना यह है कि आप वैसे ही निश्चल रहें जैसे निद्रा में सोते हैं – उस समय आप कुछ भी तो नहीं करते। शरीर शिथिल है, मन तनाव रहित है तो आप निद्रा का आनन्द लेते हैं।

इसी प्रकार जागृत अवस्था में ही सुषुप्ति की अवस्था में रहना है। जागृत–सुषुप्ति को अपनाना है क्योंकि इस प्रगाढ़ जागश्त–सुषुप्ति में ही प्रभु की प्राप्ति होती है। जब तक हमारी जागृत–सुषुप्ति अवस्था नहीं होती तब तक परमात्मा के साथ हमारी तद्रूपता नहीं होती। हमें अपने आप को तनाव मुक्त करना है। रात को देखिए, यदि मन में तनाव है तो आपको नींद अच्छी नहीं आयेगी। जब आप शरीर ढीला छोड़ देते हैं तो निद्रा देवी आपको घेर लेती हैं, आपको जागने पर प्रसन्नता की अनुभूति होती है। इसी प्रकार प्रभु के चरणों में जाकर अपने बल का प्रयोग नहीं करें। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक इन तीनों में से किसी बल का प्रयोग नहीं करें। केवल उसकी इच्छा पर सबको छोड़ दें। जैसे किसी कलाकार के हाथ में लकड़ी या पत्थर दे देते हैं और वह कोई अवरोध नहीं करता है, बोलता नहीं है, तो कलाकार बहुत ही सुन्दर तस्वीर, मूर्ति उसमें से निकालता है। इसी प्रकार हम अपने आप को पूर्णतः उस प्रेमास्पद के चरणों में समर्पित कर दें। आप देखेंगे कि आपके भीतर में एक अजीब तरह की शान्ति और आनन्द की अनुभूति कुछ समय बाद होने लगी है।

प्रभु दयानिधि हैं। उनके गुणों का गान करें और मन ही मन में प्रभु के गुणों पर विचार करें, उन्हें अपनाने कर प्रयास करें। शरीर को ढीला छोड़ दीजिये। मन में यदि विचार हैं तो मन से कह दीजिये कि इनकी गुनावन थोड़ी देर के लिए न करे। कोई तनाव न हो, हमारे और परमात्मा के बीच में अहंकार की जो दीवार है उसे तोड़ दीजिए। अहंकार हमेशा विचारों द्वारा काम करता है। विचार ही हमारी आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार है। अकारण ही हम संकल्प–विकल्प उठाते रहते हैं। समझते नहीं और ख़्यालों को अधिक मज़बूत करते रहते हैं।

अभ्यास करना है कि हमारे भीतर में विचार न उठें या कम से कम ही उठें। साधना यह करनी है कि मन हमारे अधीन हो जाय। मन परम पिता परमात्मा ने हमें बड़ा विचित्र उपकरण प्रदान किया है। इसका सदुपयोग करना है। आवश्यकता हो तो विचार उठा लिया नहीं तो इसको शान्त रखना चाहिए। उसी प्रकार जिस प्रकार भगवान शिव का नन्दी बैल उनकी सेवा में बैठा है, उतनी ही सरलता से उस मन रूपी नन्दी बैल को बैठाए रहें। जब भगवान को आवश्यकता होती है तो उस बैल की सवारी कर लेते हैं, नहीं तो वह उनकी सेवा में शान्त बैठा रहता है।

मन का काम है कि वह अकारण ही कोई न कोई समस्या खड़ी कर लेता है। जो अवकाश प्राप्त व्यक्ति हैं, नौकरी समाप्त हो गई है, पेंशन मिल रही है, बच्चे काम से लगे हैं, फिर भी वे चिंतित हैं। जीने का त़रीका यह है, जैसा कि भगवान श्रीकश्ष्ण ने गीता में दिया है कि अनासक्ति से काम करें, संसार के प्रति पकड़ को ढीला करें। जो अतीत में हो चुका है उसे क्यों पकड़ें। भूल जाइये, बच्चों की चिन्ता माँ बाप को होती है। यदि परमात्मा में विश्वास है तो कल के लिए चिन्ता क्यों ? यह हमारी भूल है। यह अहंकार है। नासमझी है हमारी। हमें ईश्वर का आश्रय लेना है। ईश्वर की गोद में बच्चे की तरह बैठना है। वह हमारा सच्चा पिता है। पिता के रहते हुए बच्चों को चिन्ता की क्या आवश्यकता ? यह जीने का त़रीका है। हमें वर्तमान में ही प्रभु की कश्पा को पाना है। यही आत्मिक

उन्नति का समय है। इसलिए बाक़ी सबको छोड़कर, सभी समस्याओं को छोड़कर प्रभु चरणों का आश्रय वर्तमान में ही ले लें। यदि किसी से हमारी शत्रुता है तो उसे क्षमा कर दें। क्षमा ही परमात्मा का रूप है।

सत्संग में आप परमात्मा की पूजा करना चाहते हैं तो आपको परमात्मा के गुणों की पूजा करनी है जिस का मतलब है परमात्मा के गुणों को सराहना, उनको अपनाना और उन्हें अपनाकर व्यवहार में विकसित करना। परमात्मा के गुण है क्षमा करना। उसी प्रकार आपका स्वभाव बन जाय, आपको दुनिया में कोई कितनी ही उत्तेजना दे, शत्रुता करे, आप क्षमा कर दें। यदि सत्संगी यह कहता है कि उसने ऐसा किया है, वैसा किया है, तो सत्संगी और सामान्य व्यक्ति में क्या अन्तर है ? यदि आप अपने आपको सत्संगी समझते हैं तो आपको इन विचारों से ऊपर उठना होगा। सामान्य व्यक्ति से आपके व्यवहार में अधिक नहीं तो कुछ न कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। आप कहते हैं कि वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करता है, मैं क्यों न करूँ ? ऐसे शब्द सत्संगी भाइयों के मुँह से नहीं निकलने चाहिए।

भगवान महावीर के पास एक राजा गया। कहने लगा कि, 'दूसरा राजा मुझसे ईर्ष्या करता है, परेशान करता है। उसके पास मुझसे धन कम है, वह चाहता है कि मेरा धन भी उसे मिल जाये। भगवान महावीर कहते हैं कि 'इसमें क्या आपत्ति है तुम्हें ?' तुम सन्यासी बन जाओ, और अपना धन उसे दे दो। उसकी सन्तुष्टि हो जायेगी।' ऐसा होना चाहिए एक सत्संगी का व्यवहार। सत्संगी को तो बलिदान देना ही पड़ेगा। यदि वह भी वही कार्य करता है जो सामान्य व्यक्ति करता है तो सत्संग का क्या उपयोग ? वह सत्संगी कहलाने का अधिकारी नहीं। तितिक्षा अपनानी होगी।

वास्तविक लाभ तब जानना चाहिए कि जब हमारे भीतर में वही गुण समा जायें जो ईश्वर के होते हैं– ईश्वर पूजा, गुरु पूजा या इष्ट पूजा

यही है। उनके गुणों को सराहें और उन गुणों को अपनाने का प्रयास करें। गुरु–दर्शन, ईश्वर–दर्शन यही है कि ईश्वर, गुरु या इष्ट के जो गुण हैं वह सब हममें समा जायें। आत्मा या जीव और परमात्मा में इतना ही अन्तर है कि परमात्मा सागर है, जीव उसकी एक लहर या बूँद है। मात्रा का अन्तर है। गुणों में अन्तर नहीं है। इस वक्त हो क्या रहा है ? विकारों के कारण हमारे गुण छुप गये हैं। वह गुणों का सूर्य अस्त हो चुका है। साधना यही करनी है कि जो गुण ईश्वर में हैं साधक वही गुण सीख लें। साधक विकास करे। पुरातन विचारों से धीरे–धीरे मुक्त हो, शुद्ध हो, सद्‌गुणों, सद्‌विचारों को अपनाकर सब कार्य करें। धीरे–धीरे मन को प्रभु के चरणों में लय करते चले जायें। आगे चलकर इसी रास्ते से जब चाहेंगे निर्विचार हो जायेंगे और जब चाहेंगे तब संसार के साथ व्यवहार कर लेंगे। कोशिश यह करनी है कि हम निर्विचार हो और निर्विकार हों।

इसलिए पूजा से पहले स्तुति गाते हैं, भजन आदि द्धारा प्रार्थना करते हैं, परमात्मा के गुणों को याद करते हैं। उनके गुणों को सराहते हैं। उसके लिये वायुमण्डल, वातावरण बना लिया। परमात्मा की नज़दीकी प्राप्त कर ली, अब उसकी प्रार्थना करें, जो माँगना है माँगे, फिर उसकी प्रसादी लेने के लिये अपने आप को उसको समर्पित कर दें। उसकी कश्पा की गंगा में स्नान करें, डुबकी लगायें। यदि आप अपने मन को दश्ढ़ करना चाहते हैं तो थोड़ा–थोड़ा अभ्यास भी करें आज्ञाचक्र पर (या जैसा भी आपको आपके गुरुजनों ने बताया हो) फिर प्रसाद अर्पण करें और प्राप्त करें।

प्रसाद चढ़ाने और लेने का तरीका यह है कि प्रसाद को जब बाँटा जाय, तब बाँटना वाला अपने इष्टदेव में लय होकर बाँटे। जो भी प्रसाद को ले वह अपने गुरुदेव, इष्टदेव के ध्यान में लय होकर प्राप्त करे। ऐसे प्रसाद से रोगियों के रोग तक ठीक हो जाते हैं। परन्तु हम लोग हँसी मज़ाक में बाँटते और लेते हैं। इसलिये निवेदन है कि शान्तिपूर्वक प्रसाद प्राप्त करें। ऐसा न करने से प्रसाद की महत्ता घट जाती है।